International Journal of Sanskrit Research 2023; 9(6): 33-35

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2023; 9(6): 33-35
© 2023 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 02-10-2023
Accepted: 05-11-2023

डॉ. बिंदिया त्रिवेदी
सहायक आचार्य, भारती महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
डॉ. बिंदिया त्रिवेदी
सहायक आचार्य, भारती महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत

प्राचीन ज्ञान परम्परा में गुरु शिष्य परम्परा

डॉ. बिंदिया त्रिवेदी

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति के प्राण गुरु शिष्य परम्परा है जहाँ गुरु शिष्य को ज्ञान सम्प्रेषित करता है। यह ज्ञान परम्परा आध्यात्मिक ज्ञान से सम्बन्धित है। परम्परा अथवा पारम्परिक का शाब्दिक अर्थ है, एक निर्बाध श्रृंखला। यह परम्परा वैदिक काल के पूर्व से प्रचलित है। देवाधिदेव महादेव को भारतीय संस्कृति में प्रथम गुरु के रूप में मान्यता प्राप्त है। महादेव के शिष्य सप्तऋषि माने जाते हैं। यह सप्त ऋषि हैं – महर्षि अत्रि, जमदग्नि, कश्यप, विश्वामित्र, गौतम, भारद्वाज एवं वशिष्ठ। इन्हीं सप्तऋषियों ने महादेव से ज्ञान प्राप्त कर विभिन्न दिशाओं में इसका प्रचार-प्रसार किया। उसके पश्चात् गुरु परम्परा में भगवान दत्तात्रेय का नाम प्रमुख है। उनके प्रमुख तीन शिष्य थे जो तीनों ही राजा थे। दत्तात्रेय में ईश्वर एवं गुरु दोनों रूप समाहित हैं। इसलिए उन्हें श्री गुरुदेवदत्त भी कहा जाता है। जगद्गुरु आदि शंकराचार्य एवं गुरु गोरखनाथ भी इस परंपरा के प्रचारक हैं। गुरु परम्परा में ऋषियों एवं महर्षियों की श्रृंखला है। उदाहरणस्वरूप परशुराम, वशिष्ठ, विश्वामित्र, व्यास, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अगस्त्य आदि। ये सब वह तत्त्वदर्शी गुरु हैं, जिन्होंने अपने अन्तर्ज्ञान को पूर्व समर्पण के साथ अपने शिष्यों तक पहुँचाया।

वैदिक युग के पूर्व से प्रारम्भ हुयी यह परम्परा आज भी विद्यमान है। गोविन्दपाद के शिष्य शंकराचार्य, शंकरानंद के शिष्य विद्यारण्य, ईश्वरपुरी के शिष्य महाप्रभु, चैतन्य, पूर्वानन्द के शिष्य विरजानंद, विरजानंद के शिष्य दयानंद, रामकृष्ण परमहंस के शिष्य विवेकानन्द, समर्थ रामदास के शिष्य शिवाजी इस प्रकार यह परम्परा निर्बाध गति से चली आ रही है। इन महान गुरुओं के त्याग एवं छत्रछाया में भारत राष्ट्र आज तक प्राणवान है।

इस गुरु शिष्य परम्परा को गुरुकुल व्यवस्था ने सजीव रखा था। प्राचीनकाल में यह कार्य नगरों एवं गाँवों से दूर रहकर शान्त एवं स्वच्छ प्रकृति के सान्निध्य में किया जाता था। भारतीय ज्ञान परम्परा में गुरु का महत्त्व अद्वितीय है।

स्कन्दपुराण में गुरु शब्द का अर्थ बताते हुए कहा गया है – 'गु' का अर्थ है अंधकार तथा 'रु' शब्द का अर्थ है तेज प्रकाश। अत: अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाने वाला, अज्ञान को दूर कर ज्ञान का मार्ग दिखाने वाला 'गुरु' कहलाता है।[1] गुरु शब्द का प्रथम वर्ण 'गु' माया इत्यादि गुणों को प्रकट करने वाला है एवं द्वितीय वर्ण 'रु' ब्रह्म का द्योतक है जो माया की भ्रान्ति का विनाश करने वाला है।[2] गुरु शिष्य परम्परा का सर्वोत्तम उदाहरण 'वेद' है। पृथ्वी पर वेदों का अवतरण इसी परम्परा के अन्तर्गत हुआ था। वेदों का सार है उपनिषद्। उपनिषद् शब्द का अर्थ है ज्ञान प्राप्ति के लिए गुरु के पास जाना।[3] मुण्डकोपनिषद् के अनुसार विद्या गुरु द्वारा शिष्य को परम्परा क्रम से प्रेषित की जाती है।[4] कोई भी ऋषि मुनि यह नहीं कहते कि यह ज्ञान उनका अपना है सभी घोषणा करते हैं कि ज्ञान की प्राप्ति पूर्वज ऋषियों अथवा गुरुओं से प्राप्त है। शिक्षा संस्कारों, साधनों एवं विद्या से सम्बन्धित है।

संस्कार पूर्व जन्म के होते हैं। परन्तु साधन एवं विद्या के लिए गुरु अनिवार्य है।शास्त्रीय एवं आध्यात्मिक ज्ञान गुरु के बिना अधूरा है। तैत्तिरीय संहिता के अनुसार ऋषि ऋण से व्यक्ति तभी मुक्त हो पाता है

जब वह गुरु के समीप शिक्षा ग्रहण करे।[5] मुण्डकोपनिषद् में गुरु शिष्य परम्परा का बृहत उल्लेख है जिसके अनुसार विश्व के निर्माता ब्रह्मा ने अपने पुत्र अथर्व को उपदेश दिया, अथर्व ने अङ्गिर को, अङ्गिर ने भारद्वाज सत्यवह को एवं भारद्वाज ने अङ्गिरस को उपदेश दिया, अङ्गिरस ने महागृहस्थ शौनक को ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया इस प्रकार परम्परा क्रम से यह विद्या प्रचारित एवं प्रसारित हुयी।[6] कठोपनिषद् में गुरु के रूप में नचिकेता भी गुरु शिष्य परम्परा का उदाहरण है। इसी प्रकार आरुणी अपने पुत्र श्वेतकेतु को ब्रह्मविद्या सम्बन्धी ज्ञान देते हैं।[7] भगवान श्रीकृष्ण का अर्जुन को श्रीमद्भगवद् गीता का उपदेश इसी परम्परा का सूचक है।

भारतीय संस्कृति में गुरु शिष्य परम्परा के अन्तर्गत गुरु शिष्य को शिक्षा देता है बाद में वही शिष्य गुरु के रूप में दूसरों को शिक्षा देता है यही क्रम चलता है। गुरु शिष्य परम्परा ज्ञान के किसी भी क्षेत्र में हो सकती है। इस परम्परा का निर्वाह प्राचीन काल में गुरुकुल एवं आश्रमों में होता था। भारतीय इतिहास स्पष्ट करता है कि गुरु की भूमिका समाज को सुधार की ओर ले जाने वाले मार्गदर्शन का कार्य करती है। गुरु का स्थान ईश्वर के समकक्ष माना गया है।[8] प्रश्नोपनिषद् में ज्ञान प्राप्त करने के लिए गुरु के पास जाने का विधिवत मार्ग बताया है जिसके अनुसार शिष्य समिधाएँ हाथ में लेकर नंगे पांव चलकर गुरु के चरणों में जाता है।[9] गुरु भी शिष्य की कठोर परीक्षा लेते थे। जिस प्रकार शिष्य उचित गुरु की खोज करता था वैसे ही गुरु भी योग्य शिष्य की खोज में रहते थे।

ऋग्वेद एवं अथर्ववेद आदि में शिष्य के गुणों का वर्णन है। इन गुणों से युक्त विद्यार्थी ही शिक्षा के अधिकारी माने जाते थे। अथर्ववेद के अनुसार आचार्य प्रवेश से पूर्व विद्यार्थी को तीन दिन परीक्षण में रखा जाता था जो उस परीक्षा को उत्तीर्ण करता था, उन्हें ही प्रवेश दिया जाता था।[10] शिक्षा प्राप्त करने के लिए शिष्य को गुरुकुल में रहना आवश्यक था। उपनयन संस्कार के पश्चात् विधिवत शिक्षा प्रारम्भ होती थी। ऋग्वेद[11] के अनुसार जिज्ञासु शिष्य ही शिक्षा का अधिकारी होता था। शिष्य शब्द विद्यार्थी के जीवन में अनुशासन के महत्त्व को प्रकट करता है।[12] अध्ययन के समय गुरु से अनुशासित शिष्य में संयम एवं अनुशासन की भावना दृढ़ हो जाती है। गुरु की आज्ञा का पालन, सेवा, भिक्षाटन इत्यादि कार्य शिष्य के द्वारा गुरु की सेवा में किये जाते थे। सत्य बोलना, विनम्र रहना, प्रियवचन बोलना ये सब गुण शिष्य के वाक्संयम में आवश्यक है। शिष्य का कर्तव्य है कि वह गुरु के प्रति मन में श्रद्धा का भाव रखे। मुण्डकोपनिषद्[13] के अनुसार गुरु में श्रद्धा रखने वाले शिष्य को ही विद्या दान का आदेश है।

गुरु को ईश्वर मानने के कारण ही शिक्षा समाप्ति पर शिष्य गुरु की स्तुति करते थे।[14] शिष्य का कर्तव्य है कि वह गुरु के प्रति अप्रिय आचरण कदापि न करें। मनुस्मृति में भी ऐसे अनेक नियमों का कथन है जिसका पालन ब्रह्मचारी के लिए अनिवार्य है।[15] यास्काचार्य ने शिष्य के गुणों एवं अवगुणों का वर्णन करते हुए कहा कि विद्या विद्वान से आग्रह करती है कि दोषदर्शी, कुटिल, असंयमी एवं गुरुद्रोही शिष्य के प्रति मुझे मत देना। जो शिष्य गुरु का आदर नहीं करता, शास्त्र भी उसकी रक्षा नहीं करता।[16] स्कन्दपुराण के अनुसार शिव के रुष्ट होने पर गुरु रक्षा करते हैं किन्तु गुरु के रुष्ट होने पर शिव भी रक्षा नहीं करते हैं।[17] अतः शिष्य कभी भी गुरुद्रोह न करे, कभी भी गुरु से असत्य वचन न कहे तथा अहंकार का भाव भी न रखे। श्वेतकेतु बारह वर्ष गुरु के समीप रहा परन्तु अहंकार युक्त था पिता द्वारा उसका अहंकार दूर किया गया।[18] जो शिष्य श्रद्धा से गुरु के समीप जाते हैं ऐसे शिष्य को गुरु स्वयं समस्त विद्या उसके अन्तःकरण में उद्भासित कर देते हैं। शिष्य की पात्रता का वर्णन करते हुए शुकनासोपदेश में कहा गया है कि शास्त्र ज्ञान से स्वच्छ मन वाले व्यक्ति ही उपदेश के योग्य पात्र होते हैं।[19] उपदेश का महत्त्व पात्र की योग्यता पर निर्भर करता है। अयोग्य पात्र को दिया गया उपदेश कष्ट उत्पन्न करने वाला होता है। शास्त्रों में शिष्य के लिए आदेश है कि वह अपनी समस्त इन्द्रियों को संयमित रखें। शिक्षा समाप्ति पर शिष्य को सामर्थ्य के अनुसार गुरुदक्षिणा का विधान था। शास्त्रों में शिष्य शब्द के लिए अनेक समानार्थक शब्दों का प्रयोग प्राप्तव्य है, जैसे - शिष्य, विद्यार्थी, अन्तेवासी, छात्र, ब्रह्मचारी इत्यादि।

गुरु शिष्य सम्बन्ध में गुरु का स्थान भारतीय ज्ञान परम्परा में उत्कृष्ट कोटि का माना गया है। शुकनासोपदेश में वर्णन है कि शिष्य चाहे कितना भी ज्ञानी हो परन्तु गुरु के बिना वह अपूर्ण है। स्वयं शुकनास कहते हैं कि चन्द्रापीड अत्यन्त विनम्र, सभी शास्त्रों के ज्ञाता हैं अतः उनके लिए उपदेश देने योग्य कुछ भी शेष नहीं है। परन्तु फिर भी उन्हें और विनम्र बनाने के लिए उपदेश दिया गया है।[20] जब चन्द्रापीड जैसे असाधारण व्यक्ति के लिए उपदेश आवश्यक है तो सामान्य व्यक्ति के लिए गुरु एवं उसका उपदेश अत्यधिक आवश्यक है। जीवन के चार पुरुषार्थों का आचरण गुरु प्रदत्त ज्ञान द्वारा ही सम्भव है। गुरु शब्द के समानार्थक अनेक शब्द प्रचलित हैं। यथा - आचार्य, उपाध्याय, अध्यापक इत्यादि। मनुस्मृति में इन सभी नामों के विशिष्ट अर्थ भी बताये गये हैं।[21] परन्तु इन सभी शब्दों में गुरु शब्द अति विशिष्ट एवं महत्तम है। यह पद देवताओं को भी दुर्लभ है।[22]

मुण्डकोपनिषद् में गुरु की परिभाषा देते हुए कहा गया है - श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं गुरुमेवाभिगच्छते। यहाँ गुरु के लिए श्रोत्रिय होना आवश्यक है। ऐसा गुरु ही जिज्ञासु शिष्य को कर्म एवं ज्ञान का भेद स्पष्ट करके उसे उचित मार्ग पर ले जाता है। कठोपनिषद् के अनुसार भी ब्रह्मज्ञान गुरु के उपदेश से संभव है।[23] जब शिष्य शास्त्रविधि से गुरु के पास आये तब गुरु को सच्चे शिष्य को विद्या न देने का अधिकार नहीं है।[24] अपनी शिक्षा की सम्पूर्ण अवधि शिष्य को गुरुकुल में गुरु के समीप रह कर पूर्ण करने का विधान था। गुरुकुल में रहकर गुरु की आज्ञा पालन शिष्य का कर्तव्य था। इसी कारण प्रतिदिन पाठ करने से पूर्व गुरु एवं शिष्य एक साथ प्रार्थना करते थे।[25] गुरु का दायित्व था कि वह गुरुकुल के सभी छात्रों के प्रति समदृष्टि रखें। श्रीमद्भगवद्गीता[26] में गुरु को तत्त्वदर्शी संत कहा गया है।

गुरु की महत्ता को प्रदर्शित करने के लिए स्कन्दपुराण के उत्तरखण्ड में महादेव के द्वारा गुरु की महिमा का अत्यन्त सुन्दर वर्णन है जिसके अनुसार श्री गुरु के चरणों की सेवा करने से मनुष्य सब पापों से मुक्त होकर शुद्ध हो जाता है।[27] जिनके अस्तित्व से जगत का अस्तित्व है, जिनके प्रकाश से वह (ईश्वर) प्रकाशित होता है, जिनके आनन्द से सब आनन्दित होते हैं, उन सच्चिदानंद श्रीगुरु को नमस्कार है।[28] जिनसे यह जगत् चेतना स्वरूप लगता है, किन्तु चित्त जिसको प्रकाशित नहीं कर सकता, जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति आदि अवस्थाएँ जिनके द्वारा प्रकाशित होती है, उन चित्तस्वरूप श्रीगुरु को नमस्कार है।[29] श्रीगुरुगीता

के अनुसार श्री गुरु का निवास स्थान ही काशी है, उसका चरणोदक गंगा है, ऐसे श्रीगुरु साक्षात् विश्वरूप हैं एवं तारक ब्रह्म हैं।[30] वह श्रीगुरु जिन्होंने संसाररूपी वृक्ष पर आरूढ़ होकर नरकरूपी समुद्र में गिरते हुए जीवों का उद्धार किया है ऐसे गुरु को प्रणाम है। वह गुरु तत्त्व गतिशील है, अचल है एवं दूर है वह समीप है। वह तत्त्व सबके अन्तःकरण में है तथा सबक बाहर भी है।[31] अतः ऐसे गुरु की सदैव अराधाना करें। गुरु शब्द के लिए अनेक समानार्थक शब्द हैं यथा – आचार्य, उपाध्याय, शिक्षक, अध्यापक इत्यादि। मनुस्मृति में इन नामों के विशिष्ट अर्थ प्रतिपादित है।[32] किन्तु गुरु शब्द इन सभी शब्दों में अति सम्माननीय है। गुरु शिष्य के अज्ञान को पूर्णतया नष्ट कर देता है। गुरु का उपदेश सभी क्लेशों को क्षीण कर देता है। शुकनासोपदेश में गुरु के उपदेश की महत्ता बताते हुए कहा गया है कि गुरु का उपदेश दोषों को भी गुणों में परिवर्तित उसी प्रकार कर देता है जैसे बुढ़ापा काले बालों को सफेद बालों में परिवर्तित कर देता है। अन्तःकरण की शान्ति का मूल गुरुपदेश है। जिस प्रकार प्रदोषकालीन चन्द्रमा अन्धकार को दूर कर देता है उसी प्रकार गुरु का उपदेश अत्यन्त मलिन दोषों को दूर कर देता है।[33] जिस प्रकार जल से किया गया स्नान समस्त मलों को दूर कर देता है उसी प्रकार गुरुपदेश मानसिक विकारों को दूर करता है।[34] गुरु का उपदेश समस्त सांसारिक वस्तुओं की तुलना में अलौकिक है। सद्गुरु अपने शिष्यों की त्रिविध तापों से रक्षा करते हैं। गुरु की महिमा का वर्णन अत्यन्त दुष्कर है ब्रह्म के समान ही गुरु कृपा भी सबको प्राप्त नहीं होती। सद्गुरु की प्राप्ति अनेक जन्मों के पुण्य फल से होती है। यह शक्ति अनन्त एवं अखण्ड है। मंत्र का मूल गुरु के द्वार कहे गये शब्द हैं तथा मोक्ष का मूल केवल गुरु की कृपा ही है।[35] गुरु का अस्तित्व भौतिक शरीर तक सीमित नहीं है। यह वह ऊर्जा एवं शक्ति है जिसे दिव्य चेतन परब्रह्म से भी उत्कृष्ट माना गया है। सर्व शुद्ध एवं पवित्र गुरुदेव जहाँ भी स्वभावतः रहते हैं, उस क्षेत्र में समस्त देवाओं का समुदाय वास करता है।[36]

अतः प्राचीन भारत की यह परम्परा समाज के कल्याण एवं उत्थान दोनों में आवश्यक है। पराधीनता ने इस परम्परा को नष्ट करने का प्रयास किया गया परन्तु भारतीय मनीषियों ने इस परम्परा को जीवंत रखा। वर्तमान में इस परम्परा को पूर्णरूपेण अपनाने का समय आ गया है। यह परम्परा ही नैतिक नियमों एवं सम्बन्धों को दृढ़ करने में सक्षम है।

संदर्भ सूची

1. गुकारत्त्वन्धकार श्च रुकारस्तेज उच्यते।
   अज्ञानग्रासकं ब्रह्म गुरुरेव न संशयः।। स्कन्दपुराण उत्तरखण्ड 23
2. गुकारः प्रथमो वर्णो मायादिगुणभासकः।
   रुकारो द्वितीयो ब्रह्म मायाभ्रान्तिविनाशनम्।। स्कन्दपुराण उत्तरखण्ड 24
3. वैदिक साहित्य का इतिहास – प्रो. पारसनाथ द्विवेदी, पृ. 146
4. मुण्डकोपनिषद् 1.1.1–2
5. जायमानो ह वै ब्राह्मणस्त्रिभिऋक्षवां जायते... एव वा अनृणो। तैत्तिरीय संहिता 6/3/10/5
6. मुण्डकोपनिषद 1/1/1–2
7. छान्दोग्योपनिषद् 6/1/
8. गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
   गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः।। गुरुगीता
9. प्रश्नोपनिषद् 1/1, छान्दोग्योपनिषद् 4/4/
10. आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं इच्छते... तं रात्रिस्तिस्त्र उदरे विभर्ति...। अथर्ववेद
11. तान् उशतो वि बोधय। ऋग्वेद
12. शसितुं योग्यः इति। अष्टाध्यायी 3/1/109
13. मुण्डकोपनिषद् 3/2/10
14. प्रश्नोपनिषद् 6/8
15. मनुस्मृति
16. भारतीय संस्कृति – डॉ. प्रीतिप्रभा गोयल
17. शिवे क्रुद्धे गुरुस्त्राता गुरौ क्रुद्धे शिवो न हि।
   तस्मात्सवप्रयत्नेन श्री गुरुं शरणं वज्रेत।। स्कन्दपुराण, रेवा खण्ड 44
18. छान्दोग्योपनिषद् 6/1/2
19. अपगतमले हि मनसि स्फटिकमणविव
   रजनिकरगमस्तयो विशन्ति सुखेनापदेशगुणाः। शुकनासोपदेश
20. शुकनासोपदेश तृतीय गद्य
21. मनुस्मृति 2/140, 141, 142
22. एवं गुरुपदं श्रेष्ठं देवानामपि दुलर्भम्
   हाहाहूहूगणै श्चैव गन्धर्वै श्च प्रपूज्यते।। गुरुगीता 25
23. कठोपनिषद् 1/2/8–9
24. तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक् प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय।
   येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम्।। मुण्डकोपनिषद् 1/2/13
25. मुण्डकोपनिषद् – शान्तिपाठ
26. श्रीमद्भगवद्गीता 15/1
27. सर्वपाप विशुद्धात्मा श्रीगुरोः पादसेवनात्। गुरुगीता–11
28. यत्सत्येन जगत्सत्यं यत्प्रकाशेन भाति तत्।
   यदानन्देन नन्दन्ति तस्मै श्री गुरुवे नमः। गुरुगीता 36
29. येन चेतयते हीदं चित्त चेतयते न यम्।
   जागृतस्वप्नसुषुरित्यदि तस्मै श्री गुरुवे नमः।। गुरुगीता 38
30. काशीक्षेत्रं तन्निवासो जाह्नवी चरणोदकम्।
   गुरु विश्वेश्वरः साक्षात् तारकं ब्रह्म निश्चितम्।। गुरुगीता 16
31. तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तत्समीपके।
   तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्य ब्राह्मतः।। गुरुगीता 62
32. मनुस्मृति 2/140, 141, 142
33. हरति च सकलमतिमलिनमप्यन्धकारमिव दोषजातं प्रदोषसमय निशाकर इव गुरुपदेशः। शुकनासोपदेश
34. पुरुषाणामखिलमल–पक्षालनक्षममजलं स्नानम।
35. ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोः पदम्।
   मंत्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा।। गुरुगीता 76
36. सर्वशुद्धः पवित्रोऽसौ स्वभावाद्यत्र तिष्ठति।
   तत्र देवगणाः सर्वे क्षेत्रे पीठे सन्ति हि।। गुरुगीता 159